National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2019; 1(23): 09-12
© 2019 NJHSR
www.sanskritarticle.com

Sasmita Bandar Nayak
Lecturer In Sarvdarshan Dept.,
P.G. Teaching Dept.,
S.J.S.U. University,
Shree Vihar, PURI-3

Correspondence:
Sasmita Bandar Nayak
Lecturer In Sarvdarshan Dept.,
P.G. Teaching Dept.,
S.J.S.U. University,
Shree Vihar, PURI-3

भक्ति परम्परा के परिप्रेक्ष्य में विभिन्न सम्प्रदाय

Sasmita Bandar Nayak

मानव हृदय भावों का कुंज है, जिसमें अनेक भाव लता-वितानों के रूप में विद्यमान रहते हैं। प्रेम, दया, करुणा, सहानुभूति, भय, क्रोध, जुगुत्सा, ममत्वादि भाव कभी-कभी तो कोई एक ही पूरे हृदय कुंज पर अकेले ही छा जाता है। ऐसे ही भावों यथा प्रेम या श्रृद्धावश हम उस ईश्वर का सान्निध्य पाने की इच्छा करते हैं, उसके दर्शन से अपने को कृतार्थ करते हैं एवं परमानन्द की अनुभूति करते हैं, तो वाही भक्ति है, इस भक्ति से हि हम ईश्वर को प्राप्त करते हैं। ईश्वर ही वह दर्पण है जिसमें व्यक्ति अपना प्रतिबिम्ब देखता है। ईश्वर की प्राप्ति के लिए ही कर्म, ज्ञान एवं भक्ति को आवश्यक माना है। श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में इन्हीं का समन्वित रूप बताया है।[1]

अनेक मनीषियों ने अपनी-अपनी अनुभूति के अनुसार भक्ति के स्वरूप के संबंध में अनेकानेक विचार प्रकट किये है – महर्षि शाण्डिल्य ने भक्ति का लक्षण देते हुए लिखा है कि ईश्वर के प्रति परमानुराग को ही भक्ति कहते हैं – **"सा परानुरक्तिरीश्वरे भक्तिः"**।[2]

देवर्षि 'नारद' ने कहा है कि परमेश्वर के प्रति होने वाले परमप्रेम को ही भक्ति कहते हैं –

"सात्वस्मिन् परमप्रेमरूपा अमृतस्वरूपा च"।[3]

अद्वैत सिद्धिकार 'श्री मधुसूदन सरस्वती' ने भक्ति का लक्षण इस प्रकार दिया है कि भगवद् भाव से द्रवित होकर भगवान के साथ चित्र के सविकल्प तदाकार भाव को भक्ति कहते हैं –

"द्रविभाव पूर्विका मनसो भगवदाकारतारूप सविकल्प वृद्धिर्भक्तिः"।[4]

एक आचार्य के मतानुसार भगवान् में चित्र की स्थिरता ही भक्ति है **–"भगवति मनः स्थिरीकरण भक्तिः"।**

स्वामी विवेकानन्द ने भि अपने 'भक्तियोग' नामक ग्रन्थ में भक्ति की तीन अवस्थायें मानी है "भागवतपुराण' में साधन की दृष्टी से भक्ति के 9 भेद (नवधा भक्ति) बताये हैं –

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वंदनं दास्यं साख्यमात्मनिवेदनम्॥[6]

आचार्य "रामचन्द्रशुक्ल" के शब्दों में – **"श्रद्धा एवं प्रेम के योग का नाम ही भक्ति है"**।[7]

'डॉ.वाटवे' ने लिखा है कि "भक्ति एक भावात्मक अनुभूति है। यह ईश्वर के स्वरूप दर्शन एवं उसके विचारमान से उद्भुत होने वाले संवेदनात्मक प्रभावों के प्रति भक्त के मस्तिष्क की एक मिश्रित प्रतिक्रया है" ।[8]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पूण्य में अनुराग होना अर्थात् इष्ट में रतिभाव का संयोजन ही भक्ति है। **"पुण्येष्वरागो भक्ति"।**

परमात्मा, भगवान, इष्ट संज्ञक ईश्वर नित्य एवं अचिन्त्य है तथा अगणित शक्तियों और अमित गुणों की खान है। उसकी इन शक्तियों एवं गुणों को प्रकाशित करने का एकमात्र आधार उसके भक्त ही है। संस्कृत वाङ्मय के विपुल भण्डागार में वेद, ब्राह्मण, आरण्यक,

उपनिषद्, आगम, पुराण, तत्व और स्तोत्र ग्रन्थों का आलोडन करने से निभ्रान्त रूप से शांत होता है कि सृष्टि के प्रारम्भ से ही ईश्वर भक्ति विविध रूपों में तथा विविध परिवेशों में मानव हृदय को भगवान के सन्निकट पहुँचाती रही है। तन्त्र साहित्य तथा स्त्रोत साहित्यागारों में प्राप्त शिवस्तोत्र, शक्तिस्तोत्र, सूर्य, गणपति तथा सरस्वती आदि के महिम्न स्तोत्र भक्ति के ही विविध परिवेश है।

भक्ति का विकास : –

भक्ति एक ऐसी मनः स्थिति है, जिसको प्राप्त करने पर व्यक्ति अपने सारे कर्म, आचार, व्यवहार ईश्वर को अर्पित कर देता है और स्वयं ध्येय का सान्निध्य पाने के लिए अधीर हो उठता है। पं.रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि – **"धर्म की रसात्मक अनुभूति का नाम भक्ति है"।** भारतीय विद्वान् श्री बालगंगाधर तिलक तथा श्री कृष्ण स्वामी आयंगर ने भक्ति को अभारतीय मानने वालों का खण्डन करते हुए भक्ति को वैदिक युग से ही बीज रु में स्वीकार किया है।9 भक्ति के स्वरूप को कब स्वीकृति मिली? भक्ति ने जन आन्दोलन का रूप कब पाया? भक्ति के पृथक्-पृथक् सम्प्रदायों में आराध्य कौन थे? उनका स्वरूप क्या था? इन सभी प्रश्नों का विचार करते ही हमारा ध्यान सर्वप्रथम वैदिक वाङ्मय की ओरआकृष्ट होता है।

वेदों में भक्ति –

वेद और ब्राह्मण ग्रन्थों में कर्मकाण्ड की प्रधानता होने पर भि जिस प्रकार ध्यान-कांड का विकास स्पष्ट परिलक्षित होता है वैसे ही ज्ञान के बाद भक्ति की परम्परा का भि संधान ऋचाओं के आधार पर किया गया है। भारतीय भक्ति पम्प्रदाय का आदि स्त्रोत ऋग्वेद है। यहाँ कुछ मंत्रो में आदमी और देवता के बीच गाढ़े प्रेम और मित्रता की कल्पना की गई है।[10] एक ही ईश्वर या सत् को विद्वान् लोग इन्द्र, मित्र, वरुण या अग्नि के नाम से पुकारते हैं। वही सुन्दर पंखो वाला दिव्य गरुड़ भी और यम व मातरिश्वा भी कहलाता है।11 ऋग्वेद में विष्णु शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में और विपुल मात्रा में किया गया है किन्तु उसकी एक विशेषता यह है कि वह सर्वज्ञ, दिव्य, महान् और व्यापक शक्ति का प्रतीक है।

उपनिषदों में भक्ति : –

उपनिषदों में वैदिक ऋचाओं के ज्ञान, कर्म, उपासना के समन्वय के स्थान पर केवल ज्ञान की प्रतिष्ठा हुई और ज्ञान-मार्ग से ब्रह्म के समीप बैठने (उप+निषद्) का उपक्रम किया गया। ब्रह्म-सान्निध्य के लिए ज्ञान की उपादेयता स्वीकार करते हुए भि ऋषियों को भक्ति की अनिवार्यता प्रतीत हुई। श्वेताश्वतर उपनिषद् में सर्वप्रथम देव (प्रभु) और गुरु की भक्ति का महत्व बताते कहा गया है –

यास्य देवे पराभाक्तिर्यथादेवे तथागुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाश्य ते महामनः॥[12]

उपनिषद्कालीन ऋषियों को ज्ञान-मार्ग के अनुसरण से यह विदित हुआ कि उत्कट प्रेम और ज्ञान के द्वारा ही दिव्य आनन्द की प्राप्ति सम्भव है। ब्रह्म की सूक्ष्म और निर्गुण कल्पना को सगुन प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठित करने के प्रयत्न में ही विष्णु, श्रीकृष्ण, वासुदेव, नारायण आदि की भक्ति या उपासना पद्धति प्रवर्तित हुई। भारतीयों में प्रेम,मनन और भावुकता के द्वारा ही सर्वेश्वरवाद के स्थान पर एकेश्वरवाद की भावना का चरम रूप उपनिषदों में दृष्टिगत हुआ।

पुराणों में भक्ति : –

उपनिषदों, सूक्त साहित्यों, महाभारत और गीता की रचना के बाद भि भगवान् की महिमा का आख्यान शेष रह गया था। जो पुराणों में प्रतिपादित और समर्थित होकर ही सार्वजनीन बना है। महाभारत में पुराण महिमा के वर्णन में एक श्लोक में कहा गया है कि अष्टादश पुराणों में श्रवण से जो फल होता है वह वैष्णव को ही प्राप्त होता है –

अष्टादश पुराणानां श्रवणद्यत्फलंभवेत्।
तत्फलं समवाप्नोति वैष्णनात्र संशय॥[13]

पुराण साहित्य ब्रह्म के सगुन रूप के विशद विवेचन के आकार ग्रन्थ है। उनमें विष्णु के विविध अवतारों, उनके रूप, अवदान, प्रयोजन एवं महत्व का वर्णन है। श्रीमद्भागवत पुराण तो श्रीकृष्ण का सम्पूर्ण जीवनचरित ही है और मत्स्य, कूर्म, वराह तथा वामन पुराण का तो नाम ही विष्णु के अवतारों से सम्बद्ध है। उनके अवतारी रूप में लौकिक-अलौकिक सभी प्रकार के शक्ति, शील और सौन्दर्य आदि गुणों की प्रतिष्ठा हुई है जो भगवान् के सगुन रूप का वर्णन करते हुए भक्ति को प्रगाढ़ करता है। वैष्णव सम्प्रदायों के प्रवर्तन के साथ भक्ति के जिन सिद्धान्तों को स्वीकार किया गया उनमें से अधिकांश का आधार पुराण-साहित्य ही है। उदाहरणार्थ चतुः सम्प्रदाय के अतिरिक्त श्रीकृष्ण चैतन्य का गौड़ीय सम्प्रदाय, श्री वल्लभाचार्य का वल्लभ सम्प्रदाय, श्रीहितहरिवंश जी का राधावल्लभ सम्प्रदाय आदि।

भक्ति सूक्तों में भक्ति : -

मुनिवर शांडिल्य उर देवर्षि नारद विरचित भक्ति-सूक्तों का वैष्णव-भक्ति के स्वरूप निरूपण में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। गीता में प्रतिपादित कर्ममार्ग की अपेक्षा व दार्शनिक ग्रन्थों में स्थापित ज्ञानमार्ग की अपेक्षा इन सूक्तों में भक्ति का अधिक महत्व बताया है। नारदीय सूक्तों के अनुसार ईश्वर की परम-प्रेम प्राप्ति ही भक्ति है। पांचरात्र के अनुसार भी प्रभु की उपासना विधिवत करनी

चाहिए। पांचरात्र तक भक्ति का विकास एक ईकाई के रूप में हुआ किन्तु उसके पश्चात वह सम्प्रदायों में विभक्त हो गयी। भक्ति सूक्तों की रचना द्वारा वैष्णव धर्म में स्वीकृत भक्ति का शास्त्रीय रूप में वर्णन हुआ है। जिनकी पृष्ठभूमि पर प्रेम की सत्ता स्थापित करके मध्ययुगीन भक्ति-सम्प्रदाय आगे बढ़े। गुप्त साम्राज्य तक तो भागवत धर्म-कृष्ण भक्ति का सात्वतों एवं पांचरात्र सम्प्रदायों द्वारा खूब विकास हुआ किन्तु साम्राज्य पतन के पश्चात उन स्थानों पर जैन एवं बौद्ध धर्म ने अपना आदिपत्य जमा लिया। कालान्तर में गीता में प्रतिपादित भक्ति का सरलतम रूप कर्मकाण्डीय गतिविधियों में उलझकर रह गया तथा जनमानस का उससे जुड़ाव बहुत सीमित होता चला गया यथा –

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥[14]

वैदिक आचार सम्मत भक्ति की पुर्नस्थापना द्रविड़ देश में हुई। आठवीं शती में आचार्य शंकर ने चतुर्दिक व्याप्त जैन एवं बौद्ध धर्म के भक्ति आन्दोलन का अपनी तर्क शक्ति के माध्यम से खण्डन करते हुए हिन्दू धर्म की पुनः स्थापना की। किन्तु ज्ञान की दृष्टी से उनका सिद्धान्त था – **"ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः। अहं ब्रह्मास्मि सर्व खल्विदं ब्रह्म तत्त्वमसि"** – ये महा-वाक्य एकत्व के बोधक हैं। उस समय दक्षिण भारत में भक्ति के पुनरुत्थान की प्रक्रिया में अनेक भागवत सम्प्रदायों की स्थापना हुई किन्तु साधारण जन वेदान्तपरक इन तथ्यों से बहुत अधिक समन्वय स्थापित नहीं कर सके। जिनमें आचार्य शंकर के निर्गुण ब्रह्म को स्वीकारने की अपेक्षा जनमानस में सगुन उपास्य देव की अराधना आरम्भ हुई। विभिन्न आचार्यों द्वारा स्थापित इन वैष्णव सम्प्रदायों में मुख्यतः श्रीरामानुज का विशिष्टाद्वैतवाद, मध्वाचार्या का द्वैतवाद, विष्णुस्वामी का विशुद्धाद्वैतवाद, निम्बार्क का द्वैताद्वैतवाद सिद्धान्त प्रचलित है। श्री वल्लभाचार्या का ब्रह्म अद्वैतवाद भी वैष्णव आचार्यों के क्रम में महत्वपूर्ण है। राधावल्लभ इसी युग का महत्वपूर्ण सम्प्रदाय है। इनका संक्षिप्त विवरण राधावल्लभ सम्प्रदाय की पृष्ठभूमि के रूप में इस प्रकार है –

विशिष्टाद्वैतवाद : -

आचार्य रामानुज के मत से स्थूल सूक्ष्म चेतनाचेतन विशिष्ट ब्रह्म ही विषय है। भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए परमेश्वर पाँच रूप धारण करता है। आचार्य के मतानुसार भक्ति (ध्यान, उपासना) ही मुक्ति का साधन है, ज्ञान नहीं। भक्ति से परमात्मा प्रसन्न होकर मुक्ति प्रदान करते हैं। जीव और ईश्वर का 'शेषशेषीभाव' सम्बन्ध है। जीव शेष-दास है और भगवान शेषी-स्वामी है। दार्शनिक शब्दावालिमें इनका सम्बन्ध विशिष्टाद्वैतवाद के नाम से विख्यात है।[15]

द्वैतवाद : -

आचार्य मध्व के मत से ब्रह्म सगुण और सविशेष है। जीव अणु परिमाण और भगवान् का दास है। अशेष सद्गुणयुक्त भगवान् विष्णु स्वतन्त्र तत्व (पदार्थ) है, जीव और जड़ ईश्वर साक्षात्कार नहीं होता। भक्ति के लिए त्याग, संयम, निर्भीकता और संसार की स्थिति का ज्ञान आवश्यक है। दार्शनिक शब्दावली में मध्वाचार्या सिद्धान्त "द्वैतवाद" के नाम से विख्यात है। यह ब्रह्म सम्प्रदाय के अंतर्गत है।[16]

शुद्धाद्वैतवाद : -

"विष्णुस्वामी के ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप है और वे अपनी आहलदिनी शक्ति के द्वारा आश्लिष्ट हैं तथा माया उन्हीं के अधीन रहती है। ईश्वर का प्रधान अवतार नृसिंह रूप बतलाया गया है। कुछ लोग विष्णु स्वामी को नृसिंह तथा गोपाल दोनों का उपासक मानते हैं।[17] यथार्थ में इस सम्प्रदाय का कोई साहित्य और दर्शन नहीं मिलता।" अतः श्री वल्लभाचार्य द्वारा प्रवर्तित शुद्धाद्वैतवाद को ही इस सम्प्रदाय का दार्शनिक मत स्वीकार कर लिया है। विष्णु स्वामी का यह सम्प्रदाय रूद्र सम्प्रदाय के अन्तर्गत आता है।

ब्रह्मद्वेतवाद : -

वल्लभाचार्य के अनुसार ब्रह्म माया से अल्पित है – वह नितान्त शुद्ध व अद्वैत है। ब्रह्म के तीन स्वरूप हैं – परब्रह्म, अक्षर ब्रह्म और जगत् ब्रह्म। इन्हीं को आधिदैविक, आध्यात्मिक और आधिभौतिक नाम से भी कह सकते हैं। जीव नित्य है। उसकी उत्पत्ति नहीं होती। जीव अणु है, जीवात्मा ज्ञाता है। जड़ जगत् उत्पन्न नहीं होता, नष्ट भी नहीं होता। केवल आविर्भाव व तिरोभाव होता रहता है। इसलिए श्री वल्लभाचार्य जी का सिद्धान्त "ब्रह्म अद्वैतवाद" के नाम से जाना जाता है।[18] वल्लभ सम्प्रदाय में राधा को श्री कृष्ण की आत्मशक्ति के रूप में, उससे अभिन्न स्वीकार किया गया है, जो वैष्णव धर्म के सगुणोपासक कृष्ण-भक्तों को परम् आनन्ददायक सिद्धान्त प्रतीत हुआ। माधुर्य भाव से राधाकृष्ण की भक्ति में अपार प्रेम प्रदर्शित किया गया है। वैष्णव भक्ति मार्गों में लीला के विविध स्वरूपों को लेकर समकालीन भक्ति-सम्प्रदायों में श्रीकृष्ण-लीला का व्यापक प्रभाव दृष्टिगत होता है।

भेदाभेदवाद : -

सनकादि सम्प्रदाय के अन्तर्गत निम्बार्काचार्य का सम्प्रदाय भी राधाकृष्ण की भक्ति को प्रधानता देने वाला वैष्णव सम्प्रदाय है। इनके अनुसार जीव अवस्था भेद से

ब्रह्म के साथ भिन्न भी है और अभिन्न भी। इनका सिद्धान्त "भेदाभेद" के नाम से जाना जाता है। ब्रह्म का सगुण और निर्गुण दोनों रूपों में विचार किया गया है। राधाकृष्ण की भक्ति में राधा को स्वकीया रूप में स्वीकार किया गया है। भक्ति के क्षेत्र में राधाकृष्ण की भक्ति की उपासना को जिन सम्प्रदायों में प्रधानता दी गई, उनमें निम्बार्क सम्प्रदाय प्रमुख है। निम्बार्क सम्प्रदाय युगलभाव से श्रीकृष्ण के किशोर स्वरूप का उपासक है।[19]

गौडीय सम्प्रदाय : -

चैतन्य महाप्रभु ने जिस सम्प्रदाय की स्थापना की उसका शास्त्रीय रूप षड् गोस्वामियों ने वृंदावन में तैयार किया। रूप, सनातन और जीव गोस्वामियों ने भक्ति पक्ष का विशद विवेचन रस-शास्त्र की मर्यादा के अनुसार प्रस्तुत कर इस सम्प्रदाय की भक्ति पद्धति को सर्वाधिक पूर्ण और शास्त्र सम्मत बना दिया। दार्शनिक दृष्टी से सिद्धान्तों का आभास "चैतन्य चरितामृत" में मिलता है किन्तु सम्प्रदाय में बलदेव विद्याभूषण के विचार ही सिद्धान्त हैं और उन्हीं पर दार्शनिक विवेचन आधृत है। श्री बलदेव के मत से पाँच तत्व ही प्रमुख हैं, ईश्वर, जीव, प्रकृति, काल, और कर्म। ज्ञान का विषय अचिन्त्य, अनित्य शक्ति, सच्चिदानन्द पुरुषोत्तम श्री कृष्ण ही है। जीव अणु चैतन्य है। ईश्वर की विमुखता ही उसके बन्धन का कारण है। इनके भक्तिमार्ग की तीन अवस्थाएँ हैं – साधन, भाव और प्रेम।[20]

सखी सम्प्रदाय : -

ब्रजमण्डल में रस भक्ति को स्वीकार करके राधाकृष्ण की उपासना करने वाले सम्प्रदायों में स्वामी हरिदास द्वारा प्रवर्तित हरिदासी या सखी सम्प्रदाय का नाम उल्लेखनीय है।[21] नित्यविहार जुगल मूर्ति का ध्यान इस सम्प्रदाय की विशेषता है। रसिक बनकर ही राधा की उपासना सखी रूप में करने का विधान है। स्वामी हरिदास ने "केलिमाल" नामक ग्रन्थ में सिद्धान्त सम्बन्धी पद लिखे हैं। इस सम्प्रदाय का राधावल्लभ सम्प्रदाय से घनिष्ठ ऐक्य है यद्यपि दोनों स्वतंत्र किन्तु रस-मार्गीय उपासना या वृंदावन वर्णन में पूर्णतया एक सामान है।

सारांश

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भक्ति एक ऐसी मनः स्थिति है, जिसको प्राप्त करने पर व्यक्ति सारे कर्म, आचार, व्यवहार ईश्वर को अर्पित कर देता है और स्वयं ध्येय का सान्निध्य पाने के लिए अधीर हो उठता है। मध्ययुगीन वैष्णव भक्ति सम्प्रदायों में वृंदावन का सुविख्यात राधावल्लभ सम्प्रदाय अपना विशिष्ट स्थान रखता है। श्री हितहरिवंश गोस्वामी ने आज से लगभग साढ़े चार सौ वर्ष पूर्व वृंदावन में भक्तिमार्ग का नवोन्मेष किया और कर्मकाण्ड के विधि-विधानों से भक्तों को मुक्ति दिलाकर माधुर्य भाव से रसभक्ति का आनन्दप्रद नूतन मार्ग दिखाया था। राधावल्लभीय भक्तों ने भी ज्ञान और योग मार्गों की अनुपयुक्तता बताकर, प्रेमाभक्ति का प्रसार किया और मधुरभाव को एक नविन व विशेष ढंग से अपनाया था। रचनाओं में सरसता, सरलता, भाषा-लालित्य और स्वाभाविक कलात्मकता है तथा काव्य सौष्ठव की दृष्टी से भी इन सम्प्रदायों का साहित्य अत्यधिक समृद्ध और सम्पन्न है।

संदर्भ : -

1.संस्कृत साहित्यशास्त्र में भक्तिरस – डॉ.दीपा अग्रवाल, पृ.सं. – 13
2.शाण्डिल्य भक्ति सूत्र – 1-1-2
3.नारदीय भक्तिरस – 2
4.रस भक्तिधारा और उसका वाणी साहित्य किशोरी शरण 'अलि' पृ.सं. – 50
5.भक्तियोग – स्वामी विवेकानन्द, पृ.सं. – 84-87
6.भागवत पुराण – स्कन्ध-7, अध्याय -5, श्लोक – 23
7.चिन्तामणि – पं. रामचन्द्र शुक्ल, लेख – श्रद्धा एवं भक्ति पृ.सं. – 44
8.रस विमर्श – डॉ. वाटवे, पृ.सं. – 282
9.राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य – डॉ. विजयेन्द्र स्नातक पृ.सं.-3
10.त्वं त्राता तरणे – (ऋ. 6-1-5), स न इन्द्र : शिव सखा (ऋ. 8-93-3).
11.ऋग्वेद, 1-164-83)
12.श्वेताश्वतरोपनिषद्, 6-23
13.महाभारत, 18-6-97
14.श्रीमद्भागवतगीता, 9-26
15.राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य – डॉ. विजयेन्द्र स्नातक पृ.सं.-26
16.राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य – डॉ. विजयेन्द्र स्नातक पृ.सं.-27
17.भागवत सम्प्रदाय – श्री बलदेव उपाध्याय, पृ.सं. – 368
18.राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य – डॉ. विजयेन्द्र स्नातक पृ.सं.-27
19.राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य – डॉ. विजयेन्द्र स्नातक पृ.सं.-29
20.राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य – डॉ. विजयेन्द्र स्नातक पृ.सं.-29
21.राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य – डॉ. विजयेन्द्र स्नातक पृ.सं.-30